

कार्य स्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने में न्यायपालिका की भूमिका: महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 पारित होने से पूर्व

Rohitas Meena*

Research Scholar, Faculty of Law, Maharaj Vinayak Global University, Rajasthan

सार – न्यायपालिका लोकतांत्रिक सरकार का तीसरा अंग माना जाता है। जो न केवल लोगों के मौलिक अधिकारों की है। अपितु सामाजिक क्रांति के संरक्षक भी कहा जाता है। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक नियंत्रण के मध्य विभाजन करने के साथ यह देश के सामान्य कानून का उच्चतम और अंतिम व्याख्याकार भी है। महिलाओं के अधिकार व सम्मान में न्यायपालिका की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है।

-----X-----

परिचय:

न्यायपालिका ने महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक न्याय दिलाने का बीड़ा उठाया है। न्यायपालिका में कानूनों की व्याख्या करने की नई प्रवृत्ति को अपनाया है ताकि महिलाओं को उनके अधिकारों के संबंध में बेहतर सुरक्षा प्रदान की जा सके। समानता, भेदभाव, कार्य स्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न, समान काम के लिए समान वेतन, मातृत्व लाभ, खतरनाक व्यवसायों में काम का निषेध और कामकाजी महिला श्रमिकों के अधिकारों के मुद्दों को सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा मान्यता दी गई है।

कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न के विरुद्ध संवैधानिक संरक्षण

भारत का संविधान सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्रदान करता है। समानता का अधिकार कामकाजी महिलाओं के खिलाफ असमान प्रावधानों को खत्म करने के लिए जरूरी कई कानूनी लड़ाइयों का मुख्य विषय रहा है। अनुच्छेद १४ यह प्रावधान करता है कि किसी को कानून के समक्ष समानता या कानूनों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद १४ महिलाओं में स्थिति की समानता का उल्लेख करने के

अलावा, महिलाओं को एक वर्ग के रूप में पुरुषों से अलग एक वर्ग के रूप में मान्यता देता है।

श्रीमती रूपन देओल बजाज बनाम कंवर पाल सिंह गिल[1], एक वरिष्ठ आईएएस अधिकारी, रूपन बजाज को जुलाई 1988 में एक डिनर पार्टी में पंजाब के तत्कालीन पुलिस प्रमुख श्री के.पी. एस.गिल के द्वारा सार्वजनिक रूप से थप्पड़ मार अपमानित किया गया था। जिसके विरुद्ध रूपन देओल बजाज ने न्यायालय में याचिका दायर की थी। श्री के.पी. एस.गिल के खिलाफ मुकदमे एवं रूपन बजाज के पक्ष में जनमत के बावजूद राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा इस मामले को दबाने की पूरी कोशिश की जा रही थी। जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने महिला के समानता के अधिकार व दैहिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध माना मानते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 294 और 509 के तहत तीन महीने के कठोर कारावास के साथ 2.5 लाख रुपये का जुर्माना भी लगाया गया।

एन. राधाबाई बनाम डी. रामचंद्रन[2], के वाद में वर्ष १९५५ की अवधि में राधाबाई सचिव थी डी. रामचंद्रन की जो उस समय राज्य के सामाजिक मंत्री थे। राधाबाई ने मंत्री महोदय के द्वारा कल्याणकारी संस्थानों में लड़कियों के साथ यौन दुर्व्यवहार का विरोध किया था जिसके परिणाम स्वरूप सचिव महोदय के

महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 पारित होने से पूर्व

साथ भी यौन दुर्व्यवहार किया गया, तदोपरांत राधाबाई की बर्खास्तगी भी कर दी। सर्वोच्च न्यायालय ने लड़कियों के साथ यौन दुर्व्यवहार के प्रति राज्य सरकार को उचित बन्दोबस्त करने के साथ सचिव महोदया की बर्खास्तगी की तारीख से वापस वेतन और भत्तों के साथ, उसके पक्ष में निर्णय पारित किया।

मधु किश्वर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य[3] बिहार के उरांव जनजाति के सदस्यों को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ता ने छोटा नागपुर टेनेंसी एक्ट, 1908 को इस आधार पर चुनौती दी गयी की अधिनियम के अधीन संपत्ति का उत्तराधिकार केवल पुरुष तक सीमित था। यह याचिकाकर्ता द्वारा न्यायालय को संतुष्ट किया गया था कि अधिनियम समानता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि देश के नागरिक के रूप में, इन जनजातियों की महिला सदस्यों को अनुच्छेद 14 के तहत संवैधानिक गारंटी की हकदार थीं। हालाँकि, योग्यता के आधार पर मामला तय करने के बजाय न्यायालय ने बिहार राज्य को विरासत की संभावनाओं का पता लगाने का निर्देश दिया। महिला को भी उत्तराधिकार पुरुषों के समान क्यों नहीं मिला।

भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण का उपबन्ध प्रावधानित करता है की राज्य धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या उनमें से किसी के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव करने से रोकता है।[4] इस प्रकार **राधा चरन बनाम राज्य[5]** के वाद में, उड़ीसा उच्च न्यायालय ने उड़ीसा वैधानिक न्यायिक सेवा नियम 1963 के नियम 6 (2) में विवाहित महिलाओं को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने के लिए अयोग्य घोषित करने के प्रावधान को अनुच्छेद 15 (1) का उल्लंघन माना था। यह अयोग्यता के रूप में लिंग (सेक्स) के आधार भेदभाव पर आधारित था। अनुच्छेद 15 का खंड 3 राज्य को महिलाओं के पक्ष में कोई विशेष प्रावधान करने से नहीं रोकेंगा।[6] दूसरे शब्दों में, यह राज्य को महिलाओं के पक्ष में विशेष प्रावधान करने में सक्षम बनाता है।

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या अनुच्छेद 15 (3) महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को अधिकृत करता है? इस प्रश्न का उत्तर कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **महादेब जिएव बनाम बी. बी. सेन[7]** नामक वाद में न्यायाधीश पी.बी. मुखर्जी, ने कहा की : अनुच्छेद 15 (3) में महिलाओं और बच्चों के लिए प्रयुक्त शब्द का अर्थ है महिलाओं और बच्चों के पक्ष में विशेष प्रावधान करना और उनके खिलाफ नहीं। अनुच्छेद 15 (3) में उल्लिखित महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान की व्याख्या महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को अधिकृत करने के लिए नहीं की जाएगी, क्योंकि अनुच्छेद 15 (3) महिला के खिलाफ भेदभाव का उपयोग नहीं किया है, लेकिन एक अलग अभिव्यक्ति का उपयोग किया

है, जिसका अर्थ है 'विशेष प्रावधान'। अभिव्यक्ति 'विशेष रूप से महिलाओं के लिए प्रावधानों को निरूपित करती है और इस तरह का विशेष प्रावधान महिलाओं के पक्ष में है। स्पष्ट रूप से इरादा महिलाओं और बच्चों के हितों की रक्षा करना है। इसने अनुच्छेद 15 (1) की स्पष्ट और सुसंगत व्याख्या दी क्योंकि महिलाओं के पक्ष में भेदभाव करने वाले प्रावधान, पुरुषों के खिलाफ जरूर भेदभाव करते हैं और इसलिए इसका अपवाद होगा। अनुच्छेद 15 (3) के सही अर्थ में महिलाओं के पक्ष में प्रावधानों पर विचार करता है, हालांकि व्याकरणिक रूप से और व्युत्पन्न रूप से, 'के लिए' का अर्थ 'संबंधित' हो सकता है और यद्यपि, सैद्धांतिक रूप से, यह संभव है। महिलाओं के प्रति उचित भेदभाव के बारे में उपबन्ध करने की प्रेरणा देता है। लेकिन 'प्रावधान' का सामान्य अर्थ निश्चित रूप से महिलाओं के पक्ष में है। 15 खंड (3) स्पष्ट रूप से खंड (1) और खंड (2) का अपवाद है क्योंकि इसका प्रभाव यह बताने के लिए है कि अनुच्छेद अन्यथा क्या मना करता है, इसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि उस खंड (1) और खंड (2) के बावजूद भेदभाव लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ, राज्य महिलाओं के पक्ष में 'विशेष प्रावधान' बनाकर पुरुषों के साथ भेदभाव कर सकता है यह सच है कि चूंकि क्लॉज (1) और (2) सामान्य शब्द लिंग का उपयोग करते हैं, इसलिए खंड (3) तार्किक रूप से उपयोग किया जा सकता है। इसका मतलब यह भी है कि राज्य महिलाओं के खिलाफ भेदभाव कर सकता है, लेकिन इस तरह के एक खंड के लिए 'प्रावधान' का इस्तेमाल किया जा रहा है। इसके अलावा, उस निष्कर्ष का समर्थन खंड (4) द्वारा किया गया है, अन्य अपवाद खंड, जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए नागरिकों के किसी भी सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए किसी विशेष प्रावधान की बात करता है। 'इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि खंड (4) के अंतिम भाग में 'के लिए' शब्द का अर्थ 'के पक्ष में' है और यह मान लेना उचित है कि संविधान में कहीं और इस्तेमाल किया गया शब्द समान अर्थ रखता है।

इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 15 (3) का अर्थ यह होगा कि महिलाओं के पक्ष में एक विशेष प्रावधान मान्य होगा भले ही वह पुरुषों के खिलाफ भेदभाव का आरोप लगाता हो। **दत्तात्रेय मोतीराम बनाम बॉम्बे राज्य[8]** में, मुख्य न्यायाधीश छागला ने स्पष्ट किया: "अनुच्छेद 15 (1) और अनुच्छेद 15 (3) के संयुक्त संचालन के परिणामस्वरूप राज्य पुरुषों के साथ महिलाओं के पक्ष में भेदभाव कर सकता है, लेकिन यह हो सकता है महिलाओं के खिलाफ पुरुषों के पक्ष में भेदभाव नहीं करते।"

लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने एक मामले में **यूसुफ अब्दुल अजीज़ बनाम बॉम्बे राज्य[9]**, के वाद में अनुच्छेद १५(३) को एक बेलगाम गुंजाइश और संचालन को अपवाद दिया। सुप्रीम कोर्ट ने टिप्पणी करते हुए यह तर्क दिया कि खंड (3) को उन प्रावधानों तक सीमित रखा जाना चाहिए जो महिलाओं के लिए फायदेमंद हैं, हम खंड में ऐसे किसी भी प्रतिबंध को पढ़ने में असमर्थ हैं।

बी. आर. आचार्य एवम क्रमर बनाम गुजरात राज्य एवम अन्य[10], याचिकाकर्ता, जो परिवीक्षा अधिकारी वेतनमान रुपये ४२५ – ७०० के रूप में नियुक्त थी। उच्च पद पर पदोन्नति का दावा करते याचिका दायर की वेतनमान रुपये ५५० - ९००, के लिये मुख्य रूप से इस आधार पर कि अधिकारियों ने उनसे जूनियर को उच्चतर पद पर पदोन्नत किया था।

याचिकाकर्ताओं का तर्क यह था कि उन्हें लेडी सुपरिंटेंडेंट के पद पर नियुक्ति के लिए योग्य माना जाना चाहिए और लेडी ऑफिसर्स को दिए गए प्रमोशन जो उन्हें इस तरह के पद से जूनियर थे, को रद्द कर अलग रखा जाना चाहिए।

उत्तरदाता की ओर से दिए गए जवाब के हलफनामे में यह स्पष्ट कहा गया था कि कुछ पद ऐसे थे जो केवल महिला अधिकारियों के थे। जिन संस्थानों में निराश्रित महिलाओं, अविवाहित, माताओं आदि को रखा गया था, उनकी अध्यक्षता महिला अधीक्षक (लेडी सुपरिंटेंडेंट) ने की, केवल महिला अधिकारी (लेडी ऑफिसर्स) को ही योग्य माना गया। याचिकाकर्ताओं ने हालांकि तर्क दिया कि केवल लिंग के आधार पर उनके साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। उन्हें ऐसे पदों पर पदोन्नति के लिए भी योग्य माना जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं द्वारा किया गया यह दावा स्वीकार नहीं किया जा सका। यह राज्य सरकार को तय करना है कि जो संस्थाएँ विशेष रूप से महिलाओं के लिए हैं, उनका नेतृत्व केवल महिलाओं या महिला अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए। सरकार को ऐसे संस्थानों का नेतृत्व करने के लिए पुरुष अधिकारियों को नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है, अगर वह ऐसा करना उचित नहीं मानता है। यदि महिलाओं के लिए एक विशेष प्रावधान किया जाता है, तो याचिकाकर्ता शिकायत नहीं कर सकते थे कि उनके साथ भेदभाव किया गया था। संयोग से यह कहा जा सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 में धर्म, जाति, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक है। हालाँकि, उक्त अनुच्छेद का खंड (3) प्रदान करता है, "इस लेख में कुछ भी राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए कोई विशेष प्रावधान बनाने से नहीं रोकेगा। इसलिए, अदालत ने यह नहीं कहा याचिकाकर्ताओं के

इस विवाद में कोई भी तथ्य ऐसा नहीं पाया गया कि उन्हें महिला अधीक्षक के पद पर पदोन्नति के लिए योग्य माना जाए।

केरल राज्य बनाम कुन्हीपाकी[11] इस वाद में राजकीय महाविद्यालयों में महिला व्याख्याताओं के रूप से महिलाओं को वरीयता दिए जाने के प्रश्न को समीक्षा (रिव्यू) हेतु लाया गया। एक पुरुष लेक्चरर ने दावा किया कि अनुभव में एक महिला लेक्चरर जूनियर को उसी विभाग में प्रोफेसर पद पर पदोन्नत किया गया था, जो अनुच्छेद 16 का उल्लंघन करता है। परंपरागत रूप से, उपलब्ध होने पर केवल महिलाओं को महिला कॉलेजों में शिक्षण पदों पर नियुक्त किया गया था। राज्य ने तर्क दिया कि चूंकि महिला कॉलेजों में महिलाओं की प्राथमिकता एक स्थापित प्रथा थी, इसलिए महिला शिक्षक के लिए वरीयता उचित थी।

न्यायालय ने माना कि जहां महिलाओं के कॉलेज में महिलाओं के लिए प्राथमिकताएं अनुचित नहीं थीं, किन्तु वहां लिंगों के बीच सामान्य असमानता को देखते हुए, वरिष्ठता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, महिला प्रतियोगी को पदोन्नति का समर्थन करने के कारणों को प्रस्तुत करने के बाद सरकार को पदोन्नति पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया। वास्तव में, न्यायालय ने माना कि महिलाओं को महिलाओं के कॉलेज में पुरुषों पर वरीयता दी जा सकती है, एक पारंपरिक प्रथा है, लेकिन एक बार नियुक्त होने पर, समान योग्यता (कैलिबर) के आधार पर वरिष्ठ पुरुष और महिला कर्मचारियों को पदोन्नत किया जाना चाहिए। कुन्हीपाकी का निर्णय इस मायने में महत्वपूर्ण है कि न्यायालय ने मौजूदा सामाजिक प्राथमिकताओं को सुदृढ़ किया। अनुच्छेद 16 में लैंगिक भेदभाव पर प्रतिबंध लगाने पर जोर देने के बजाय, न्यायालय महिलाओं की परम्परा की रक्षा के लिए उत्सुक दिखाई दिया। यदि महिला पुरुषों के कॉलेज में भेदभाव का दावा करती है, तो क्या अदालत में वही स्थिति होगी जहां ज्यादातर कर्मचारी पुरुष हैं? कुन्हीपाकी के तर्क के बाद, न्यायालय संभवतः पुरुषों के कॉलेजों में महिलाओं को वरीयता देने के की परम्परा को बरकरार रखेगा।

नरेंद्र कुमार बनाम हरियाणा राज्य[12], कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी उल्लंघन है जैसा कि अनुच्छेद 21 में उल्लेख किया गया है कि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं होगा। आजीविका का अधिकार जीवन के अधिकार का एक अभिन्न पहलू है।

महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 पारित होने से पूर्व

मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य[13] के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा की यदि हमारे संविधान में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा के अधिकार के रूप में उनके अधिकार को नहीं माना गया है, तो हमारे संविधान में सन्निहित लिंग समानता की अवधारणा अप्रभावी होगी।

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य[14] इस ऐतिहासिक मामले में यौन उत्पीड़न को एक अलग अवैध व्यवहार के रूप में पहचाना गया था। यौन उत्पीड़न में महत्वपूर्ण कारक व्यवहार का अवांछित अंत है। जिससे अपराधी के इरादे के बजाय प्राप्तकर्ता पर ऐसी कार्रवाइयों का प्रभाव अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

उपरोक्त मामले में, निर्णय जे.एस.वर्मा द्वारा दिया गया था। सुजाता मनोहर और बी.एन.किरपाल की ओर से जे.जे. विशाखा द्वारा पीआईएल के माध्यम से लैंगिक समानता के लिए काम करने वाली एक गैर सरकारी संस्था के रिट याचिका पर संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत कामकाजी महिलाओं के मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना की गयी।

सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा निम्नलिखित दिशानिर्देशों को निर्धारित किया गया था:

- क. सार्वजनिक या निजी क्षेत्र में कार्यस्थल के प्रभारी सभी नियोक्ताओं को अपने दायित्व की व्यापकता के बिना यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए उचित कदम उठाने चाहिए,
- ख. जहां ऐसे अपराध भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य कानून के तहत विशिष्ट अपराधों के अधीन होते हैं, नियोक्ता उचित प्राधिकारी के साथ शिकायत करके, कानून के अनुसार उचित कार्रवाई शुरू करेगा।
- ग. यौन उत्पीड़न के शिकार को अपराधी या उनके स्वयं के स्थानांतरण की तलाश करने का विकल्प होना चाहिए।
- घ. महिला कर्मचारियों के अधिकारों के संबंध में जागरूकता पैदा करने के लिए दिशानिर्देशों को प्रमुखता से अधिसूचित किया जाना चाहिए।
- ड. नियोक्ताओं को बाहरी या तीसरे पक्ष द्वारा यौन उत्पीड़न के मामलों में प्रभावित व्यक्तियों की सहायता करनी चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 का हवाला दिया और यौन उत्पीड़न पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए दिशानिर्देशों के निर्माण में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और मानदंडों के महत्व पर जोर दिया। यौन उत्पीड़न से महिला का संरक्षण और उनके मौलिक अधिकारों को सार्थक बनाना। न्यायालय ने देखा कि घरेलू कानून की अनुपस्थिति में, सभी कार्य स्थलों पर कामकाजी महिलाओं के यौन उत्पीड़न की बुराई की जाँच के लिए प्रभावी उपाय तैयार करने के लिए, अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन की सामग्री और मानदंड गारंटी की व्याख्या के उद्देश्य से महत्वपूर्ण हैं। लैंगिक समानता, संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 (1) और 21 में मानवीय गरिमा के साथ काम करने का अधिकार और उसमें निहित यौन उत्पीड़न के खिलाफ सुरक्षा उपाय। मौलिक अधिकारों के अनुरूप और अपनी भावना के अनुरूप किसी भी अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशन को संवैधानिक गारंटी के उद्देश्य को बढ़ावा देने के लिए अर्थ और सामग्री को बढ़ाने के लिए इन प्रावधानों को पढ़ना चाहिए। यह अनुच्छेद 51 (सी) और संसद की सक्षम शक्ति से संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची की प्रविष्टि 14 के साथ अनुच्छेद 253 के आधार पर पढ़े जाने वाले अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और मानदंडों को लागू करने के लिए कानून बनाने की शक्ति है। अनुच्छेद 73 भी प्रासंगिक है। " न्यायाधीशों ने भारत में लैंगिक समानता की संवैधानिक गारंटी की प्रकृति और महत्वाकांक्षा के उद्देश्य से महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन के कठोर कदम उठाने पर बल दिया ।

निष्कर्ष:

समाज के सभी वर्गों द्वारा महिलाओं को परेशान किया जाता है। कामकाजी महिला चाहे वह प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, पुलिस अधिकारी आदि हो को भी सार्वजनिक संपत्ति माना जाता है। ऐसी स्थिति में साधारण महिला की क्या स्थिति हो सकती है, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। कार्य स्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न एक विश्वव्यापी घटना है।

विभिन्न रिपोर्ट के आधारों एवं महत्वपूर्ण मामलों के विश्लेषण से पता चलता है कि देश के न्यायपालिका ने भारत के संविधान में निहित महिलाओं के मानव अधिकार के गरिमा को बनाए रखने तथा अंतरराष्ट्रीय उपकरणों में घोषित लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा महत्वपूर्ण व गतिशील भूमिका निभाने का प्रयास किया। कामकाजी महिलाओं के कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध जो संविधान ने संरक्षण प्रदान करने के विभिन्न प्रकारों के उपबन्ध किये हैं किन्तु यह अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करते रहे हैं जिसका प्रत्यक्ष लाभ कामकाजी महिलाओं को नहीं मिल पाता है। जिसके फलस्वरूप महिलाओं का शोषण

और उत्पीड़न निरंतर होता रहा है। इसके रोकथाम हेतु प्रत्यक्ष व कठोर विधि की आवश्यकता निरंतर महसूस की जाती रही है जिसका सीधा सम्बन्ध महिलाओं के यौन उत्पीड़न के विरुद्ध कठोर व त्वरित निर्णय लेने में सवैधानिक अधिकारियों को सक्षम बनाये। इसी मांग के फलस्वरूप सरकार ने कामकाजी महिलाओं के कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने हेतु महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 पारित किया जो यह कानून विशाखा दिशानिर्देशों का सार सुरक्षित रखता है, और इसके प्रावधानों को विस्तार पूर्वक लागू करता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा महिलाओं का यौन उत्पीड़न निवारण हेतु बताया गये प्रावधान बहुत कम भारतीय नियोक्ता द्वारा के अनुपालन में थे। अधिकांश भारतीय नियोक्ताओं ने कानूनी आवश्यकता के बावजूद कानून को लागू नहीं किया था जहाँ कि १० से अधिक कर्मचारियों वाले किसी भी कार्यस्थल की आवश्यकता है इसे लागू करने के लिए। फिक्की-ईवाई नवंबर २०१५ की रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय कंपनियों के ३६% और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीच २५% यौन उत्पीड़न अधिनियम, २०१३ के अनुरूप नहीं थे। जो इस कानून की अनुपालना में विफल रहते हैं, सरकार ने उन नियोक्ताओं के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करने की चेतावनी भी दी है।

सन्दर्भ

1. एआईआर, १९९६ सुप्रीम कोर्ट ३०९।
2. एआईआर, १९९५ सुप्रीम कोर्ट २३८।
3. १९९२ एस.सी.सी १०२।
4. भारत का संविधान, अनुच्छेद १५ (१)।
5. एआईआर, १९६९ उड़ीसा २३७।
6. सु. प्रा. नोट ४ , अनुच्छेद १५ (३) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगा।
7. एआईआर, १९५१ कलकत्ता ५६३।
8. एआईआर, १९५३ बॉम्बे ३११ ।
9. एआईआर, १९५२ कलकत्ता ८२५ ।
10. १९८८ लैब आई. सी. १४६५ ।

11. एआईआर, १९६५ केरला १०८।
12. जेटी, (१९९४) २ एससीसी ९४ ।
13. एआईआर, १९६६ सुप्रीम कोर्ट ९४२।
14. एआईआर १९९७ सुप्रीम कोर्ट ३०११।

Corresponding Author

Rohitas Meena*

Research Scholar, Faculty of Law, Maharaj Vinayak Global University, Rajasthan